संपादकीय जागरण

शुक्रवार, 13 अप्रैल, 2018 : वैशाख कृष्ण 12 वि. 2075

संकट में अवसर भी छिपा होता है

समझबूझ का संकट

सुप्रीम कोर्ट के जज कुरियन जोसेफ की ओर से लिखी गई चिट्ठी यही बता रही है कि जजों की नियुक्तियों के मामले में सरकार और सुप्रीम कोर्ट के बीच वैसी समझबूझ नहीं है जैसी कि होनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के कोलेजियम की ओर से जजों की नियुक्तियों की अनुशंसा पर सरकार को किसी नतीजे पर पहुंचना ही होगा। या तो वह यह स्पष्ट करे कि उसे कोलेजियम की ओर से सुझाए गए नाम मंजूर क्यों नहीं हैं या फिर इन नामों को अपनी स्वीकृति प्रदान करे। उसके समक्ष एक विकल्प कोलेजियम व्यवस्था के स्थान पर न्यायाधीशों की नियुक्ति की नई व्यवस्था बनाने का भी है। यह ठीक है कि विगत में सुप्रीम कोर्ट ने न्यायिक नियुक्ति आयोग को खारिज कर दिया था, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सरकार ऐसे किसी आयोग के गठन की नए सिरे से तैयारी न करे। उचित यह होगा कि सरकार सुप्रीम कोर्ट की आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए न्यायिक आयोग की स्थापना करने वाले संविधान संशोधन विधेयक को नए सिरे से संसद के समक्ष रखें। यह जटिल कार्य अवश्य है, लेकिन यह ठीक नहीं कि न्यायाधीश ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करते रहें। दुनिया के किसी भी लोकतांत्रिक देश में ऐसा नहीं है। न्यायाधीशों की ओर से अपने साथियों की नियुक्ति करना लोकतांत्रिक सिद्धांतों के भी विपरीत है। उचित यह होगा कि सुप्रीम कोर्ट भी यह समझे कि यदि वह कार्यपालिका के दखल की आशंका को रेखांकित कर कोलेजियम व्यवस्था की वकालत करता रहेगा तो उस पर सवाल उठते ही रहेंगे।

यह ठीक नहीं है कि एक अरसे से सुप्रीम कोर्ट कुछ ऐसे कारणों से चर्चा में है जो उसकी छवि के अनुकूल नहीं हैं। एक ओर कुछ वरिष्ठ जज प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ मोर्चा खोले हुए हैं तो दूसरी ओर न्यायाधीशों की नियुक्तियों का मसला विवाद से घिरा हुआ है। बेहतर होगा कि एक और जहां सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश अपने आंतरिक प्रशासन को आपस में मिल-बैठकर दुरुस्त करें वहीं दूसरी ओर न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मसले पर कार्यपालिका के साथ विचार-विमर्श करके ऐसी कोई व्यवस्था बनाएं जो लोकतांत्रिक मूल्यों और मर्यादाओं के अनुकूल हो। विवाद के मसलों को लेकर चिट्ठियां लिखना अथवा प्रेस कांफ्रेंस करना समस्या का हल नहीं है। यह ठीक नहीं कि सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ जज प्रधान न्यायाधीश को कठघरे में तो खड़ा करने में लगे हुए हैं, लेकिन यह नहीं स्पष्ट कर पा रहे हैं कि वह मुकदमों के आवंटन के अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए किस तरह न्याय प्रक्रिया को प्रभावित कर रहे हैं? स्पष्ट है कि इन स्थितियों में एक संदेह का वातावरण उत्पन्न हो रहा है। ऐसा वातावरण सुप्रीम कोर्ट की प्रतिष्ठा के लिए उचित नहीं। बेहतर होगा कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश यह समझें कि जिस कोलेजियम व्यवस्था को सिद्धांत रूप में वे भी सही नहीं मानते उसे जारी रखने पर क्यों जोर दे रहे हैं? इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी समझना होगा कि न्यायपालिका का नेतृत्व करने के नाते उनकी भी जवाबदेही बनती है। विडंबना यह है कि यह जवाबदेही मुश्किल से ही नजर आती है और यही कारण है कि देश का न्यायिक तंत्र समस्याओं से उबरने का नाम नहीं ले रहा है।

आपत्तियां सही करें

प्रदेश सरकार ने बेसिक शिक्षा परिषद के शिक्षकों को नए शैक्षिक सत्र के पूर्व अंतर जिला स्थानांतरण की सुविधा दी। तबादला चाहने वाले शिक्षकों से आवेदन मांगे गए। बाद में उन महिला शिक्षकों को भी इसकी परिधि में शामिल किया गया जो ससुराल अथवा पति के निवास स्थान वाले जिले में तबादला चाहती हैं। दोनों ही आवेदन ऑनलाइन आमंत्रित किए गए। सैंतीस हजार छह सौ दो आवेदन आए। उसके बाद बनी लिस्ट की काउंसिलिंग गई, जिसमें सात हजार सात सौ सरसठ आवेदक बाहर हो गए। उन्तीस हजार आठ सौ पैंतीस बचे हैं, इनमें पच्चीस हजार छियासी सिर्फ महिलाएं हैं। निरस्त हुए आवेदकों में से छह हजार से अधिक ने आपत्तियां दर्ज की हैं, लेकिन उनकी आपत्तियां तक सही फार्मेट में नहीं आ रही हैं।

आवेदकों में से छह हजार से अधिक ने आपत्तियां दर्ज की हैं, लेकिन उनकी आपत्तियां सही फार्मेट में नहीं आ रही हैं

विभागीय उच्चाधिकारी असमंजस में हैं कि उनकी आपत्तियों पर विचार करें तो कैसे। फिलहाल, इन आपत्तियों को मंडलीय सहायक बेसिक शिक्षा निदेशकों को भेजा गया है और 16 अप्रैल तक निस्तारित होना है। बेसिक शिक्षा अधिकारी जिलेवार बैठक भी करेंगे। निस्तारण के बाद 18 से 20 अप्रैल तक बीएसए आवेदनों में ऑनलाइन संशोधन अथवा सत्यापन करेंगे। इसके बाद ही तबादले की कार्रवाई होगी। इसी बीच गंभीर रूप से बीमार पुरुष शिक्षकों और अविवाहित शिक्षिकाओं ने भी कोर्ट में याचिका दाखिल कर इस सुविधा का लाभ उन्हें भी देने की याचना की। इन मामलों की अभी कोर्ट में सुनवाई चल रही है, फैसला आना बाकी है।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या पांच सूत्रीय मिशन से पूर्वोत्तर भारत का अपेक्षित विकास संभव हो पाएगा?

आज का सवाल
क्या जुकरबर्ग के माफीनामे और आश्वस्ति के बाद फेसबुक में लोगों को भरोसा लौट आएगा?

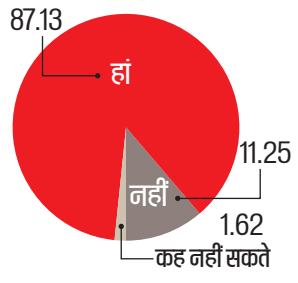

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y –हां, **N**–नहीं, **C**–कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

सपा–बसपा की साझा चुनौती

डॉ. एके वर्मा

लोकतंत्र में सत्तारूढ़ दल को हराने के लिए विपक्षी दलों के गठबंधन में कोई बुराई नहीं है, लेकिन उन्हें एक वैकल्पिक विचारधारा एवं शासन मॉडल जनता के सामने रखना चाहिए

जैसे-जैसे 2019 का लोकसभा चुनाव पास आता जा रहा है वैसे-वैसे भाजपा की चिंता बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर गैर-भाजपा दलों के एक मंच पर आकर महागठबंधन बनाने और विशेषकर उत्तर प्रदेश में पिछले 23 वर्षों से धुर विरोधी मायावती की बसपा और अखिलेश यादव की सपा के गठबंधन की संभावनाओं से भाजपा के शीर्ष नेताओं के माथे पर चिंता की लकीरें उभर आई हैं। मोदी मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री और रिपब्लिकन पार्टी के प्रमुख रामदास अठावले ने तो यहां तक कह डाला कि बसपा-सपा गठबंधन को आगामी लोकसभा चुनाव में प्रदेश में 25 से 30 सीटें मिल सकती हैं। लोकसभा चुनाव 2014 का परिणाम अप्रत्याशित था। उसमें सपा को 80 सीटों में पांच, कांग्रेस को दो और बसपा को एक भी सीट नहीं मिली, शेष 73 सीटें भाजपा-अपना दल गठबंधन ने जीती। 2019 लोकसभा चुनावों में ऐसा प्रदर्शन दोहराना भाजपा के लिए आसान नहीं। बहरहाल बसपा-सपा को उसका श्रेय नहीं मिलेगा। मायावती-अखिलेश दोनों गठबंधन को लेकर उत्साहित हैं। यह 2017 चुनावों में 'दो लड़कों के गठबंधन' (अखिलेश-राहुल गठबंधन) की याद दिलाता है। गोरखपुर और फूलपुर लोकसभा उपचुनावों में विजय से दोनों के हौसले बुलंद हैं, लेकिन किसी ने ध्यान नहीं दिया कि नवगठित निषाद पार्टी ने गोरखपुर से प्रवीण निषाद को पहले ही अपना प्रत्याशी घोषित कर दिया था, अखिलेश यादव ने केवल उसे समर्थन और चुनाव चिन्ह दिया। वह ऐसा नहीं भी करते तो भी वह अच्छा चुनाव लड़ता और संभवतः जीतता भी। प्रदेश में निषाद (मल्लाह) अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे हैं। 1891 की जनगणना में निषादों (मल्लाहों) की गणना उत्तर प्रदेश में जनजातियों के रूप में हुई थी और तब उनकी जनसंख्या पौने चार लाख थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद उनको अनुसूचित जनजाति का दर्जा न देकर उन्हें पिछड़ी जातियों में शामिल कर लिया गया। आज उत्तर प्रदेश में उनकी अनुमानित जनसंख्या 19 लाख है। उनकी लड़ाई अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल करने को लेकर है। प्रदेश के हर जिले में उनकी जनसंख्या औसतन 20 से 25 हजार है। वे संगठित हैं तथा चुनाव परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं। चूंकि उनकी समस्या का समाधान राज्य के प्रतिवेदन पर संसद को करना है, इसलिए उनका समर्थन 2019 में भाजपा को जा सकता है, क्योंकि योगी और मोदी के तालमेल से उनको अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल हो सकता है।

बसपा-सपा गठबंधन तीन परिकल्पनाओं पर आधारित है। एक, सांप्रदायिक भाजपा को केंद्र से हटाना है। दो, गोरखपुर-फूलपुर में बसपा-सपा के साथ आने से भाजपा हारी और तीसरा यही कि बसपा-सपा अपने-अपने मतों का एक-दूसरे के पक्ष में हस्तांतरण करा सकेंगी। भाजपा को हराने का संकल्प राजनीतिक है। लोकतंत्र में यह कोई बुराई नहीं कि कुछ पार्टियां एक साथ आकर चुनाव लड़ें और सत्तारूढ़ दल को हराने का प्रयास करें। प्रश्न यह है कि आखिर भाजपा को जनता ने सत्ता दी है और जनता उसके कार्यों का गहन परीक्षण कर रही है और यदि उसे भाजपा को हटाना है तो गठबंधन को जनता की सुविधा के लिए एक वैकल्पिक विचारधारा एवं शासन मॉडल जनता के सामने रखना चाहिए। सतारूढ़ दल को हटाना तो ठीक है, पर आप करेंगे क्या? जनता को अब नकारात्मक राजनीति रास नहीं आती, वह सकारात्मकता चाहती है। यदि राष्ट्रीय स्तर पर जनता को कोई सार्थक विकल्प नहीं समझ में आया तो इस बात की संभावना कम है कि वह अभी मोदी सरकार को हटाने की सोचे।

अवधेश राजपूत

जहां तक गोरखपुर-फूलपुर का सवाल है, यह ठीक है कि वहां भाजपा हारी, लेकिन बसपा-सपा के साथ आने से नहीं। उसके अनेक कारण थे जो अब सभी को ज्ञात हैं। फिर जिस तरह राज्यसभा चुनावों में अखिलेश ने मायावती के मंसूबों पर पानी फेरते हुए सपा के हितों को ऊपर रख भीमराव अंबेडकर की जगह जया बच्चन को जितवाया उससे मायावती को संकेत चले गए कि अखिलेश का असली इरादा क्या है। फिर भी यदि मायावती गठबंधन पर आमादा हैं तो उसका कारण उनकी पार्टी की राष्ट्रीय पार्टी के रूप में मान्यता का सवाल भी है जो 2014 से ही खतरे में है। इसके लिए बसपा को चार या अधिक राज्यों में प्रत्येक में छह प्रतिशत वोट और कम से कम चार लोकसभा सीटें प्राप्त होनी चाहिए, लेकिन सबसे अहम सवाल है कि क्या मायावती और अखिलेश अपने-अपने दलों के मतों को एक-दूसरे को हस्तांतरित करवा सकेंगे? 2017 में इस परिकल्पना का हश्र सपा-कांग्रेस गठबंधन की नाकामी के रूप में हम देख चुके हैं जिसमें न तो अखिलेश, न ही राहुल अपनी-अपनी पार्टियों के मतदाताओं को अपने साथ रख सके और न ही उनके मतों का गठबंधन उम्मीदवार के पक्ष में हस्तांतरण करा सके। मायावती के दो मुगालते हैं। एक कि उनके पास अभी भी वह जादू है कि उनके कहने से दलित मत सपा को चले जाएंगे और दूसरा यह कि अखिलेश में वह काबिलियत है कि वह सपा के मतों को बसपा उम्मीदवारों को हस्तांतरित करा सकेंगे। इन दोनों पर ही गंभीर प्रश्न चिन्ह हैं। आज दलितों को विश्वास नहीं कि मायावती का कोई दलित एजेंडा है। वर्ष 2007 में जब उनकी सरकार बनी तो सबसे ज्यादा नुकसान दलितों का हुआ जिनके हितों की अनदेखी कर मायावती ने ब्राह्मण और मुस्लिम हितों को तरजीह दी। परिणामस्वरूप दलितों का एक बहुत बड़ा वर्ग बसपा से भाजपा की ओर खिसक गया जिससे आज उत्तर प्रदेश में सभी 17 दलित सांसद और 85 में से 75 दलित विधायक भाजपा के पास हैं। अब दलितों से यह उम्मीद कतई नहीं की जा सकती कि वे मायावती के कहने से बसपा को वोट करेंगे। भाजपा के पास दलित सांसदों और विधायकों की बड़ी फौज होने से न केवल दलितों को सरकार में पैठ प्राप्त है, वरन उससे भाजपा ने भी दलितों पर अच्छी पकड़ बना ली है।

अखिलेश और मायावती का गठबंधन 'कॉस्मेटिक-पॉलिटिक्स' का नमूना है जिसमें दो खतरे हैं। एक, बसपा और सपा गठबंधन से जो उम्मीदवार पार्टी टिकटों से वंचित रह जाएंगे, वे या तो स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में उनके वोट काटेंगे या भाजपा का दामन थामेंगे। हाल में नरेश अग्रवाल इसके उदाहरण हैं जो सपा छोड़कर भाजपा में चले गए। दूसरा, बसपा-सपा के वोट-बैंक परस्पर विरोधी आर्थिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सपा के समर्थक भू-स्वामी हैं और बसपा के दलित भूमिहीन-मजदूरों का शोषक और शोषित का रिश्ता है। इसलिए उनका एक साथ आना कठिन है। तीन-तलाक के मुद्दे को आगे बढ़ाने से पीड़ित मुस्लिम महिलाओं का एक वर्ग भीतर ही भीतर कहीं मोदी से जुड़ा है, पर वह वोटों में कितना तब्दील होगा अभी यह कहना मुश्किल है। भाजपा नेताओं को बसपा-सपा गठबंधन से चिंतित होने के बजाय इस पर चिंता करनी चाहिए कि उनके सांसद और विधायक न तो जमीन पर जनता से जुड़ रहे हैं, न ही मोदी और भाजपा सरकारों के कामों की कुशल मार्केटिंग कर पा रहे हैं।

(लेखक सेंटर फॉर सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

response@jagran.com

स्मरण के नाम पर रस्म अदायगी

डॉ. उदित राज

इस पर विचार करना होगा कि महापुरुषों का रस्मी तौर पर स्मरण करने से हमें आखिर क्या हासिल हो रहा है

पिछले कुछ वर्षों से डॉ. आंबेडकर की जयंती कुछ ज्यादा ही जोरशोर से मनाई जा रही है। इस बार भी ऐसा ही होता दिख रहा है। सत्तापक्ष के साथ-साथ विपक्षी दल भी डॉ. आंबेडकर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने की तैयारी कर रहे हैं। दो अप्रैल को भारत बंद के बाद सभी राजनीतिक दल खुद को दलित हितैषी बताने में कोई कसर नहीं रहने देना चाहते, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि चाहे डॉ. आंबेडकर हों अथवा अन्य महापुरुष हमारे समाज में उनका स्मरण रस्म अदायगी के तौर पर ही अधिक होता है। महापुरुषों का स्मरण करके कर्तव्य की इतिश्री अधिक की जाती है। इस सिलसिले को देखते हुए इस पर विचार करना होगा कि आखिर महापुरुषों का रस्मी तौर पर स्मरण करने से हमें क्या हासिल हो रहा है? इस पर न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों, बल्कि खुद दलित समाज को भी विचार करना चाहिए।

महापुरुषों के विचार पढ़ना और उन्हें दोहराना हमारी परंपरा का हिस्सा है, लेकिन जब उन्हें आत्मसात करने की बारी आती है तो हम इस मोर्चे पर मात खा जाते हैं। बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर के बारे में भी यही बात सटीक बैठती है। 14 अप्रैल को उनकी जयंती के अवसर पर देश भर में व्यापक स्तर पर कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, लेकिन अगर समाज की मौजूदा स्थिति और असंतोष को देखें तो लगता है कि हम बाबा साहब के विचारों को आदर्श रूप में नहीं अपना पाए हैं। आंबेडकर जयंती पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में लगेगा कि आज ही सामाजिक व्यवस्था दुरुस्त होकर सामाजिक क्रांति हो जाएगी, लेकिन कार्यक्रमों से निकलते ही हम उन विचारों एवं आदर्शों को सभागार में ही छोड़ आते हैं। फिर से अपनी जाति और पहचान के दायरे में सिकुड़ जाते हैं। केवल आंबेडकर ही नहीं, बल्कि गांधी जी हों या अन्य महापुरुष उनके मामलों में भी यही देखने को मिलता है। गांधीजी ने तो यहां तक कहा था कि आजादी के बाद राज्य के अस्तित्व की भी दरकार नही होगी और हर गांव अपने आप में आत्मनिर्भर हो जाएगा। यहां तक कि उन्होंने तो कांग्रेस को ही भंग करने तक का सुझाव दे दिया था, लेकिन असल में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

गांधीजी, नेहरू या सुभाष चंद्र बोस या भगत सिंह, इनके विचारों को अंगीकार करना अभिजात्य वर्ग की आवश्यकता नहीं है। पहले से ही यह समाज अच्छी स्थिति में रहा है तो उसके ऊपर शायद इनके विचारों का मुलम्मा न चढ़े। महापुरुषों के विचारों को भारतीय समाज मानता तो क्या हमारा देश अमेरिका, चीन, रूस जैसा विकसित नही होता। मध्यकाल में कबीरदास के जो क्रांतिकारी बोल

थे, कितनों ने उन्हें अपनाया? असल में उन्हें सराहते सभी हैं, लेकिन अपनाते बहुत कम हैं। अगर हम इन्हें अपना लें तो उन तमाम सामाजिक चुनौतियों से पार पा सकते हैं जो इस समय देश के समक्ष दस्तक दे रही हैं। समाज में अगर सभी अपनी भूमिका का सही रूप से निर्वहन करें तो शायद असंतोष की यह आग जोर ही न पकड़े, लेकिन यदि किसी भी पक्ष की ओर से जरा भी चूक हुई तो देश को ही इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा। बीते दो अप्रैल को देश में भारत बंद के दौरान इसकी बानगी भी नजर आई।

दलित संगठनों द्वारा बुलाया गया भारत बंद एक तरह की अनियंत्रित मिसाइल ही कहा जाएगा और फिलहाल इसका अंदाजा लगाना भी मुश्किल है कि इसका निशाना आखिर कहां जाकर लगेगा। इसे मूलतः दलित नौजवानों के गुस्से की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। इसका सबसे खास पहलू यही रहा कि अखिल भारतीय स्तर पर इसका असर देखा गया। कोई नेता या संगठन इसके नेतृत्व की दावेदारी नहीं कर सकता, क्योंकि यह स्वतः स्फूर्त था। जब भारत बंद होने लगा तब जरूर कुछ नेता और संगठन श्रेय लेने के लिए आगे आने लगे। इसमें दलित विचारको और नेताओं से कहीं अधिक समाज को सोचना होगा कि आखिर कहां पर चूक हो रही है? इस आंदोलन के गर्भ में कई बाते समाहित हैं जिन पर समय रहते चर्चा करना बेहद जरूरी है। अगर हम उन मुद्दों की पड़ताल करेंगे तो उनका समाधान हमारे उन महापुरुषों की दिखाई राह में ही नजर आएगा जिनका हम प्रतीकों के तौर पर तो बहुत इस्तेमाल करते हैं, लेकिन उसे जीवन में नहीं उतार पाते।

विकसित देश बनने की आकांक्षा के बीच हमें निश्चित रूप से यह समझना होगा कि आंतरिक द्वंद्व चाहे किसी भी समाज में कायम हों उस समाज को उन द्वंद्वों को खत्म करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। इसमें चीन से ही सबक लिया जा सकता है। चीन के महान क्रांतिकारी नेता माओत्से तुंग समाज के अंतर्विरोध को खत्म करते रहे और उन्होंने चीनी समाज को एक सूत्र में पिरोने में काफी हद तक सफलता भी हासिल की। दो अप्रैल की घटना का असर उत्पादन, शिक्षा और विकास पर पड़ना ही था जिसकी कीमत सभी को चुकानी पड़ेगी। हमें इस पर भी मनन करना होगा कि देश की इतनी बड़ी आबादी को उत्पादन, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय सेवा आदि से वंचित करके कैसे विकसित भारत बनाया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा एससी-एसटी एक्ट के एक प्रावधान में परिवर्तन और विश्वविद्यालयों के शिक्षकों में भर्ती से संबंधित निर्णय ने दलितों के असंतोष को भड़काने में चिंगारी का काम किया। जो भी हो, लेकिन एक बात जरूर प्रमाणित हो गई है कि अब दलितों और पिछड़ों को अपमानित और शोषित करके नहीं रखा जा सकता, मगर उससे पहले दलित समाज को भी अपने आंतरिक मतभेद सुलझाने होंगे और एक व्यापक दृष्टि विकसित करनी होगी। अनावश्यक विरोध और अपरिहार्य विरोध के बीच में रेखा खींचनी होगी।

एक तरह से डॉ. आंबेडकर के विचारों को खुद दलितों ने ही नहीं अपनाया और इस तरह अपना ही अहित किया है। वे खुद ही तमाम विभाजित रेखाओं में बंटे हैं। यही वजह है आज भी उनके हितों पर तलवार लटकती रहती है और उन्हें इसके लिए आवाज बुलंद करनी पड़ती है। इस बार भारत सरकार 14 अप्रैल को जस्टिस डे के रूप में मना रही है, लेकिन इन्हें कौन न्याय देने वाला है जब ये खुद जातिवाद के जहर से नही निकल रहे हैं। विचार पढ़ने और बोलने से जीवन नही बदलते, बल्कि व्यवहार में उतारने से अपना असर दिखाते हैं।

(लेखक लोकसभा सदस्य हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आध्यात्मिक उपचार

हर व्यक्ति का जीवन समस्याओं से घिरा है। अक्सर लोग हमारे पास आते हैं और चाहते हैं कि उनकी समस्याओं का समाधान हो जाए। जबकि हमारे हाथ में न राज्यसत्ता है और न पास में धन है जिसे देकर कहें जाओ, इससे अपना काम चलाओ। हमारे पास तो एक आध्यात्मिक उपाय ही है और वही सबसे कारगर उपाय है। दूसरे सब तरीकों से समस्या सुलझेगी तो वह क्षणिक होगी। कुछ देर के लिए या कुछ दिन के लिए समस्या समाहित हो जाएगी, पर कुछ दिन बाद फिर उभर जाएगी। किंतु आध्यात्मिक उपायों से जब समस्या को सुलझाया जाएगा तो वह समाधान स्थाई होगा। व्यक्ति में आध्यात्मिक चेतना जागृत हो जाए तो वह स्वयं सुधर जाएगा। हर आदमी में बदलने की, सुधरने की शक्ति है। जरूरत है उस शक्ति को जगाने की। हनुमान की शक्ति को जामवंत ने जगाया था। शक्ति तो हनुमान में थी, किंतु उसका भान उन्हें नहीं था। वह शक्ति जामवंत के ललकारने पर जागृत हुई तो वे न केवल विशाल सागर को पार कर लंका को जला पाए, न केवल संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मण के प्राण बचाए, बल्कि अनेक समस्याओं का समाधान भी किया।

धर्मगुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे लोगों की आध्यात्मिक चेतना को जगाएं। एक बार आध्यात्मिक चेतना जाग गई तो फिर कोई उलझन नहीं रहेगी। मीरा की आध्यात्मिक चेतना जाग गई तो महाराणा भी उसे संकल्प से डिगा नहीं सके। कबीर की आध्यात्मिक चेतना जाग गई तो उन्हें कोई पथ से विचलित नहीं कर सका। वे अपूर्व संत बन गए। उनके बारे में आज तक पता नहीं चल पाया कि वे हिंदू थे या मुसलमान? जब तुलसी की चेतना जागी तो रामचरित मानस के रचयिता और प्रख्यात संत बनकर लोक मानस में प्रतिष्ठित हुए। आध्यात्मिक चेतना जाग गई तो फिर आदमी इस लोक में रहकर भी एक दूसरे लोक का प्राणी बन जाता है। फिर वह जगत के मिथ्याचार से अपना संबंध तोड़ लेता है। वह अपनी आत्मा में रमण करने लगता है। फिर मेरा जैसा कुछ ही नहीं रह जाता है, सब तेरा हो जाता है। समस्याओं की जड़ मेरापन है। आदमी मेरेपन के कारण ही बीमार होता है, तनावग्रस्त होता है, हिंसक होता है, अहंकारी होता है, स्वार्थी होता है। इन समस्याओं और बीमारियों का इलाज अध्यात्म द्वारा ही संभव है।

आचार्य डॉ. लोकेश मुनि

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

कानून सर्वोपरि

सबक देने वाली सजा शीर्षक से लिखे अपने लेख में अद्वैता काला ने बड़ी तटस्थता के साथ अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। काला हिरण मामले में सुपरस्टार सलमान खान को हुई सजा यह दर्शाती है कि कानून सर्वोपरि है। वन्य जीव संरक्षण के क्षेत्र में यह सजा एक मिसाल है, क्योंकि बाघ हो या काला हिरन ये ऐसी सूची में दर्ज जीव हैं जो इनके अस्तित्व पर खतरे को व्यक्त करती है। विचार कीजिए कि यदि इनका अस्तित्व खत्म हो गया तो क्या कोई वैज्ञानिक विधि या अन्य प्रक्रिया इन्हें दोबारा उत्पन्न सकती है? अगर नहीं तो फिर सजा मात्र भी इसके लिए क्या पर्याप्त है? वन्य जीवों का अस्तित्व हमारे जीवन से परस्पर जुड़ा हुआ है। लिहाजा उनके संरक्षण के लिए हर व्यक्ति को बिश्नोई समाज जैसा दृष्टिकोण रखना चाहिए। वहीं दूसरी तरफ सलमान खान को हुई सजा न्याय में देरी का एक बड़ा उदाहरण है। अगर उन्हें यह सजा पहले ही हो गई होती तो न तो प्रशंसकों को इतना दुख होता, न ही खुद सलमान को इतनी परेशानी होती, परंतु इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि न्याय में देरी अन्याय के बराबर है। हम आशा करते हैं भविष्य में इस पूरी घटना से समाज में वन्य जीवों के प्रति संवेदनशीलता का एक संदेश जाएगा। साथ ही किसी मामले के जल्द निवारण का भी कोई समाधान अवश्य निकलेगा।

सुमित यादव, रावगंज, जालौन

बस्ते का बोझ

सरकार ने बस्ते का बोझ कम करने के लिए जो कदम उठाया है, वह स्वागत योग्य है। आजादी के बाद से ही बच्चे बस्ते के बोझ से दबे आ रहे हैं। यह एक प्रकार से शिक्षा के क्षेत्र में कुप्रथा ही कहें तो कोई गलत नहीं होगा। बस्ते के बोझ से बच्चे मानसिक तनाव झेलने के साथ में शारीरिक रूप से भी कमजोर होते जा रहे हैं। शिक्षा के व्यवसायीकरण होने के चलते बच्चों पर शिक्षा का दबाव बढ़ता जा रहा है। छोटे बच्चों को स्कूल से इतना होमवर्क दे दिया जाता है, जिसको लेकर भी वह तनाव में रहते हैं। इस पर भी सरकार को विचार करना चाहिए।

jaidevrathee@gmail.com

शिक्षा से दूर होता युवा

किसी भी देश की तरक्की में उस देश के युवाओं का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहता है। युवा जितनी तेजी से आगे बढ़ेगा उतनी ही तेजी से उसका देश भी आगे बढ़ेगा। मगर युवा के विकास करने के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। आज जिस तरीके से हमारे देश में युवा की अनदेखी हो रही है वह चिंता का विषय है। पिछली सरकारें भी युवाओं के भविष्य से खिलवाड़ करती आई हैं। वर्तमान सरकार भी इस दिशा में कुछ खास करती नहीं दिख रही है, बल्कि वर्तमान सरकार ने एक नियम बनाया है जिसमें केंद्रीय विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वायत्ता देने की बात है। इससे फीस बढ़ेगी और गरीब वर्ग के युवा शिक्षा से वंचित होंगे।

मोहम्मद अली, दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म

रेलवे की जिम्मेदारी

रेलवे पर दिनोंदिन यात्रियों का भार बढ़ रहा है। उनकी टिकट की व्यवस्था के साथ ही यात्रियों की सुरक्षा की बड़ी चुनौती है। ज्यादातर रेलवे स्टेशनों पर टिकट के लिए लंबी-लंबी लाइन लगी रहती है। कई बार तो ट्रेन के तय समय तक टिकट पाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में भीड़ के बीच दिव्यांगों को बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वहीं महिलाओं-बुजुर्गों के लिए अलग कतार की व्यवस्था लचर नजर आती है। इसमें सुधार के लिए रेलवे में ई-टिकट मशीन की सुविधा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे युवा तकनीक के साथ जुड़ें और रेलवे स्टेशनों पर भीड़ कम हो।

mkumar.sidhmukh@gmail.com

नवजात के लिए पालना योजना

दिल्ली के लाल बहादुर शास्त्री अस्पताल ने पालना योजना शुरू कर प्रशंसनीय कार्य किया है। यह इन्सानित को जिंदा रखने के लिए एक उदाहरण भी है। अस्पताल ने उन बच्चों के लिए पालना रखवा दिया है जिसमें बिन ब्याही मां अपने बच्चे को रख सकती है जो अपने इस बच्चे को पालना नहीं चाहती। इसमें उनका नाम भी गोपनीय रखने की व्यवस्था है। ये बच्चे ज्यादातर अवैध रूप से जन्म लेने वाले होते हैं जो बिन ब्याही मां के लाल होते हैं, जबकि इन बच्चों का कोई दोष नहीं होता। उनको मां की गलती का प्रायश्चित करना पड़ता है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ऐसी मां समाज के लोक- लाज की वजह से पाल नहीं सकतीं और उन नवजात बच्चे को कूड़े के ढेर पर या फिर जंगल में फेंक देती हैं जिसके परिणामस्वरूप इन मासूमो को कुत्ते या कोई अन्य जंगली जानवर अपना ग्रास बना लेते है। बच्चों के साथ ऐसी ही घटनाओं को रोकने के लिए ये अनोखी पहल शुरू की गई है। बच्चे किसी के हों, कैसे भी हों, होते तो बच्चे ही हैं और इनके साथ इस तरह का व्यवहार करना कहीं से भी इंसानियत की परिचायक नहीं है। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण होता है जब कोई मां अपने ही दिल के टुकड़े को अपने ही हाथों से खत्म कर दे। भले ही ये बच्चे नवजात होते हैं, लेकिन इन बच्चों का जीवन भी बहुमूल्य होता है। उनके अंदर भी कुछ न कुछ प्रतिभा होती है, जिसको मारना कहीं से भी सही नहीं है। ऐसे बच्चे अगर मृत्यु को प्राप्त हो गए तो न जाने किस तरह की प्रतिभा का अंत हो सकता है। इसलिए मनुष्य होने के कारण हम सबका यह फर्ज बनता है कि हर बच्चे के जीवन को बहुमूल्य समझा जाए और उनके इस अमूल्य जीवन को बचाया भी जाए।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

ट्वीट–ट्वीट

देश की संसद में जब कोई बात रखी जाती है तो उसे गंभीरता से सुना जाना चाहिए, लेकिन बजट सत्र के दौरान जिस तरह संसद में कांग्रेस सहित विपक्ष के द्वारा गैर–जिम्मेदाराना ढंग से गतिरोध पैदा किया गया और जनहित के कार्यों में बाधा पहुंचाकर हंगामा किया गया, वह शर्मनाक था।

भूपेंद्र यादव@byadavbjp

अच्छा है कि मवेशियों के व्यापार को लेकर पीएम नरेंद्र मोदी तार्किक नीति लाए हैं, लेकिन इसमें एक साल क्यों लग गया। इस दौरान गौरक्षा के नाम पर अराजकता फैलाई गई। लगता है कि उनके मंत्रिमंडलीय सहयोगी और नौकरशाह 2019 के लिए उनकी संभावनाएं खराब करना चाहते हैं।

सुनील जैन@thesuniljain

कठुआ की वीभत्स घटना को अंजाम देने वाले मानव नहीं दानव हैं। पूरे देश को आसिफा को इंसाफ दिलाने के लिए एकजुट होना चाहिए। यह बेहद डरावनी बात है कि भारत में ऐसा अपराध हो सकता है और वह भी पूजास्थल परिसर में।

श्रीश्री रविशंकर@SriSri

डिफेंस एक्सपो में भारत के नक्शे में पीओके को पाकिस्तानी क्षेत्र में दिखा दिया। अगर हमसे यही गलती होती तो हमारे खिलाफ देशद्रोह का मामला दायर हो जाता।

हरिंदर बावेजा@shammybaweja

जनपथ

बाभन–ठाकुर–दलित में बांटो हिंदु